जैन पथप्रदर्शक

ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)

नैतिक एवं सामाजिक चेतना का अग्रदूत निष्पक्ष पाक्षिक

भगवान धर्म की स्थापना नहीं करते, वरन् धर्म का आश्रय लेकर आत्मा से परमात्मा बनते हैं।

- बिन्दु में सिंधु, पृष्ठ-18

वर्ष : 25, अंक : 16 | **सम्पादक :** पण्डित रतनचन्द भारिल्ल | आजीवन शुल्क : 251 रुपये

नवम्बर (द्वितीय) 2002 | **प्रबन्ध सम्पादक :** पण्डित संजीवकुमार गोधा | वार्षिक शुल्क : 25 रुपये

भगवान महावीर निर्वाणोत्सव सानन्द सम्पन्न

1. जयपुर (राज.) : यहाँ श्री टोडरमल स्मारक भवन में पण्डित शांतिकुमारजी पाटील तथा पण्डित राजकुमारजी शास्त्री के निर्देशन में सामूहिक पूजन के पश्चात् निर्वाण लाडू चढ़ाया गया।

इसके पश्चात् अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त तार्किक विद्वान डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल का 'दीपावली' पर विशेष मार्मिक प्रवचन हुआ; जिसमें उन्होंने हम दीपावली कैसे मनाते हैं और हमें दीपावली कैसे मनानी चाहिये ? पर विशेष जोर दिया। उन्होंने कहा कि दीपावली मनाओ तो गौतम गणधर जैसी मनाओ कि जिन्होंने महावीरस्वामी के निर्वाण होने पर शाम तक ही केवलज्ञान सूर्य प्रकट किया और दिव्यध्वनि के प्रवाह को रुकने नहीं दिया। हमें भी इस अवसर पर प्रतिदिन कम से कम 1 घण्टे स्वाध्याय का नियम लेकर दीपावली मनाना चाहिये। उन्होंने अहिंसात्मकरूप से दीपावली पर्व मनाने पर जोर दिया।

इस अवसर पर दोपहर में ब्र. कल्पना बेन द्वारा कक्षा ली गई तथा रात्रि में पुन: डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के मार्मिक प्रवचन का लाभ मिला।

2. पिड़ावा (राज.) : यहाँ आदिनाथ जिन चैत्यालय में भगवान महावीरस्वामी के निर्वाणोत्सव के अवसर पर दिनांक 6 से 8 नवम्बर तक रूपचन्दजी अध्यापक द्वारा शान्तिविधान का आयोजन किया गया।

विधि-विधान के सम्पूर्ण कार्य पण्डित धनसिंहजी 'ज्ञायक' तथा उनके सुपुत्र पण्डित चिन्मय जैन शास्त्री द्वारा सम्पन्न कराये गये। दीपावली के अवसर पर अ. भा. जैन युवा फैडरेशन द्वारा भक्ति संध्या का आयोजन किया गया।

इसी अवसर पर पण्डित आशीषजी शास्त्री टीकमगढ़ एवं पण्डित गणतंत्रजी शास्त्री खरगापुर द्वारा पाठशाला निरीक्षण किया गया।

3. बानपुर (उ.प्र.) : यहाँ भगवान महावीर निर्वाणोत्सव अनेक रंगारंग कार्यक्रमों के साथ सानन्द सम्पन्न हुआ। प्रात: सामूहिक पूजन के पश्चात् निर्वाण लाडू चढ़ाया गया। दोपहर में प्रौढ़ कक्षा तथा सायंकाल भक्ति के पश्चात् दीपावली पर विचार गोष्ठी का आयोजन किया गया। रात्रि में दो लघु नाटिकायें 'पापा मुझे संस्कार दो' तथा 'प्राप्त पर्याय में तन्मयता' प्रस्तुत की गई।

ग्वालियर में धर्म प्रभावना

यहाँ थाटीपुरा जिनमंदिर में दिनांक 10 नवम्बर 2002 को सहज ही टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय के प्राचार्य आदरणीय पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल, जयपुर का समागम प्राप्त हुआ। आपका 'क्रिया, परिणाम और अभिप्राय विषय पर प्रात: एक मार्मिक प्रवचन हुआ।

साथ ही सायंकाल नवनिर्मित त्रिभुवन तिलक सीमंधर जिनालय फालका बाजार में 'पंचकल्याणक का स्वरूप एवं उपयोगिता' विषय पर आपका एक प्रभावी प्रवचन हुआ; जिसे उपस्थित जन समुदाय ने खूब सराहा।

इसी अवसर पर प्रात: दादा विमलचन्दजी झांझरी उज्जैन के एक प्रवचन का लाभ भी प्राप्त हुआ।

ज्ञातव्य है कि यहाँ दिनांक 13 से 18 जनवरी 2003 तक पंचकल्याणक होना निश्चित हुआ है। **- सुनील शास्त्री, मुरार**

मेधावी जैन छात्रों को स्वर्णिम अवसर

अलीगढ़ स्थित तीर्थधाम मंगलायतन में आत्मार्थी जैन छात्रों को नैतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक व लौकिक शिक्षा प्रदान करने के पावन उद्देश्य से श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन का शुभारम्भ किया जा रहा है; जिसमें कक्षा 9 व 11 में उन छात्रों को प्रवेश दिया जायेगा (1) जो जैनधर्म के मूलभूत सिद्धान्तों में दृढ़ श्रद्धा रखते हों (2) जैन शास्त्रों के अध्ययन अध्यापन में रुचि रखते हों (3) पूर्व परीक्षा (आठवीं और दसवीं) में न्यूनतम 60 प्रतिशत अंक हों (4) दृढ़ प्रतिज्ञ होकर विद्यालय की चर्या एवं नियमों का पालन कर सकें।

जो छात्र प्रवेश के इच्छुक हों, वे शीघ्र ही हमारे कार्यालय में पत्र लिखकर आवेदन-पत्र मंगा लेवें। आवेदन पत्र का मंगलायतन कार्यालय में जमा कराने की अन्तिम तिथि 15 फरवरी 2003 है, इसके बाद प्राप्त होनेवाले आवेदन पत्रों पर विचार करना संभव नहीं होगा।

नोट - आगामी सत्र 15 जून 2003 से प्रारंभ होगा; जिसमें छात्रों को आवास एवं भोजन की व्यवस्था नि:शुल्क रहेगी।

- पवन जैन/अशोक लुहाड़िया,
श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन, विमलांचल, हरिनगर, अलीगढ़ (उ.प्र.)

सम्पादकीय –

हरिवंशपुराण : एक अनुशीलन

18 – रतनचन्द भारिल्ल

(गतांक से आगे .....)

कुणिक के बाद अगली 16 पीढ़ियों में एक से बढ़कर एक अनेक उत्तराधिकारी राजा हुए। सभी पूर्व पीढ़ियों ने अपनी अगली पीढ़ी को राज्यसत्ता सौंपकर मानव जीवन को सार्थक करनेवाली जैनेश्वरी दीक्षा लेकर मुनिव्रतों का पालन करते हुए आत्म साधना की। तथा समाधिमरण कर सद्गति को प्राप्त होते रहे, जिनके नाम इसप्रकार हैं ह्न कुणिक के पुत्र पुलोम, पुलोम के पौलोम, पौलोम के बाद क्रमशः महीदत्त, अरिष्टनेमी, मत्स्य, अयोधन, मूल, शाल, सूर्य, अमर, देवदत्त, हरिषेण, नभसेन, शंख एवं भद्र आदि 16 पीढ़ियों के उपरान्त राजा अभिचन्द्र हुए। अभिचन्द्र ने विंध्याचल के ऊपर चेदिराष्ट्र की स्थापना की तथा शुक्तिमती नदी के किनारे शुक्तिमती नाम की नगरी बसाई।

अभिचन्द्र की वसुमती नाम की रानी से वसु नाम का पुत्र हुआ। वसु आर्द्र हृदय था। उसी नगरी में वेदों का वेत्ता एक क्षीरकदम्ब नाम का ब्राह्मण रहता था, जो अध्यापन कार्य करता था। उसकी पत्नी स्वस्तीमती के पर्वत नाम का पुत्र था। गुरु क्षीरकदम्ब ने वसु, पर्वत और नारद इन शिष्यों को समस्त शास्त्र पढ़ाये थे। एक बार क्षीरकदम्ब उक्त तीनों शिष्यों को अरण्यक वेद पढ़ा रहा था कि उसने किसी चारण ऋद्धिधारी मुनि के द्वारा अपनी भविष्यवाणी के रूप में यह वचन सुने कि ह्न वेदाध्ययन में संलग्न इन चार मनुष्यों में अपने पाप परिणामों के कारण दो तो अधोगति को प्राप्त होंगे और दो पुण्य परिणामों के फलस्वरूप ऊर्ध्वगति प्राप्त करेंगे। वे चारण ऋद्धि के धारक मुनिराज अवधिज्ञानी थे, दयालु थे और संसार की सब स्थिति जानते थे। वे अवधिज्ञानी मुनिराज अपने साथ के दूसरे मुनिराज की उक्त चारों प्राणियों के सम्बन्ध में जिज्ञासा का समाधान करके वहाँ से अन्यत्र चले गये। इधर मुनिराज के श्री मुख से अपनी भविष्यवाणी सुनकर क्षीरकदम्ब शंकित हो उठा। दिन ढलने पर उसने तीनों शिष्यों को तो घर भेज दिया और स्वयं अन्यत्र चला गया। उसकी पत्नी स्वस्तीमती ने शिष्यों के साथ अपने पति क्षीरकदम्ब को घर आया न देख शंकित होकर शिष्यों से पूछा ह्न आपके उपाध्यायजी कहाँ गये? साथ में घर क्यों नहीं आये?

शिष्यों का उत्तर था ह्न आते ही होंगे। आप चिंतित न हों। स्वस्तीमती दिनभर तो प्रतीक्षा करती हुई चुप बैठी रही; परन्तु जब वह रात्रि में भी घर नहीं आये तो उसके शोक की सीमा नहीं रही। वह पति की भावनाओं से सुपरिचित थी; इसकारण उसने सोचा ह्न संभवतः उन्होंने दीक्षा ले ली है, यह सोचकर वह रातभर रोती रही। प्रातः होने पर पर्वत एवं नारद अपने गुरु उपाध्याय क्षीरकदम्ब को खोजने निकले। वे कितने ही दिन भटकते-भटकते थक गये, अन्त में उन्होंने देखा कि हमारे पिता (गुरु) क्षीरकदम्बक वन में अपने गुरु के पास निर्ग्रन्थ मुद्रा में बैठे पढ़ रहे हैं। पिता को इसप्रकार बैठा देखकर पर्वत का धैर्य छूट गया उसने दूर से ही लौटकर माँ के लिए सब समाचार सुनाये। यह समाचार जानकर प्रारंभ में स्वस्तीमती बहुत दुःखी हुई; किन्तु धीरे-धीरे सामान्य हो गई और माँ-बेटे सुख-शान्ति से रहने लगे।

पर्वत तो पिता क्षीरकदम्ब को मुनि मुद्रा में देख उनसे बिना मिले ही लौट आया था; परन्तु नारद विनयवान था, अतः उसने गुरु के पास जाकर प्रदक्षिणा दी, नमस्कार किया, उनसे वार्तालाप कर अणुव्रत धारण किए और उसके बाद वह घर वापस आया। अतिशय-निपुण नारद ने आकर शोक से सन्तप्त पर्वत की माता को आश्वासन दिया, नमस्कार किया और उसके बाद अपने घर की ओर प्रस्थान किया। तदनन्तर वसु के पिता राजा अभिचन्द्र भी संसार से उदासीन हो गये, वे अपना राज्य वसु को सौंपकर तपोवन में चले गये।

नीति का वेत्ता राजावसु इन्द्र के समान जान पड़ता था, उसने समस्त पृथ्वी को स्त्री के समान वशीभूत कर लिया था। राजा वसु सभा में आकाश स्फटिक के ऊपर स्थित सिंहासन पर बैठता था, इसलिए अन्य राजा उसे आकाश में ही स्थित मानते थे। राजा वसु सदा आकाश स्फटिक पर चलता था और स्वयं सदा सत्य बोलता था तथा सत्य पक्ष का ही पोषण करता था, इसकारण सम्पूर्ण राज्य में उसका यह यश फैल रहा था कि वह धर्म के प्रभाव से आकाश में चलता है। उसकी एक पत्नी इक्ष्वाकुवंश की और दूसरी पत्नी कुरुवंश की थी। दोनों से दस पुत्र हुए। ये सभी पुत्र वसु के ही समान पराक्रमी थे, इनके साथ राजावसु अत्यधिक राज्यसुख का अनुभव कर रहा था।

एक दिन बहुत से छत्रधारी शिष्यों से घिरा नारद गुरुपुत्र 'पर्वत' को गुरु के समान मानता हुआ उससे मिलने आया। पर्वत ने नारद का अभिवादन किया और नारद ने भी प्रत्युत्तर में अभिवादन की प्रक्रिया पूरी की। तदनन्तर गुरु पत्नी को नमस्कार कर नारद बैठ गया। उस समय पर्वत छात्रों के समक्ष वेदवाक्यों की व्याख्या कर रहा था। 'अजैर्यष्टव्यम्' इस वेदवाक्य में जो 'अज' शब्द आया उसका अर्थ करते हुए पर्वत ने कहा ह्न 'अज' का अर्थ बकरा है, अतः स्वर्ग के वांछकजनों को 'बकरे' से ही यज्ञ करना चाहिए।

युक्ति और आगम के अवलम्बन से अज्ञानांधकार के नाश करनेवाले नारद नामक शिष्य ने अपने गुरु भाई पर्वत के द्वारा किये गये उक्त अर्थ का विरोध किया। नारद ने पर्वत को संबोधते हुये कहा कि – तुम 'अज' शब्द का इसप्रकार का हिंसक, पाप प्रवृत्ति को बढ़ावा देनेवाला अनर्थकारी अर्थ क्यों कर रहे हो? तुम्हारी इस व्याख्या से जो धर्म के नाम पर कल्पनातीत हिंसा की परम्परा चलेगी, उस पाप के भागीदार तुम बनोगे। तुम मेरे सहपाठी रहे हो, तुम्हें यह अनर्थ परम्परा को बढ़ानेवाला अर्थ कहाँ से प्राप्त हुआ है ? गुरुजी ने तो अज शब्द का ऐसा अर्थ कभी नहीं बताया, उन्होंने तो यह कहा था कि जिसमें अंकुर उत्पन्न होने की शक्ति नहीं होती – ऐसा पुराना धान्य अज कहलाता है। यही सनातन धर्म है। नारद के इसप्रकार समझाने पर भी पर्वत ने अपनी हठ तो छोड़ी ही नहीं, उल्टी इस बात को अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लिया और ऐसी कठोर प्रतिज्ञा कर ली कि यदि मैं इस बात में हार जाऊँगा तो अपनी जीभ कटा लूँगा। सो ठीक ही है जिसकी होनहार ही खोटी हो, उसे सद्बुद्धि नहीं आ सकती। **(क्रमशः)**

कहान-संदेश

धर्मी की मंगल भावना

1

सर्वजीव साधर्मी हैं, सर्व जीव पूर्णानन्द को प्राप्त हों कोई जीव अपूर्ण न रहो। कोई जीव अल्पज्ञ न रहो, कोई जीव विरोधी न रहो। कोई जीव विपरीत दृष्टिवंत न रहो। सर्वजीव सत्य के मार्ग में आ जाओ और सुखी हो जाओ। सर्वजीव पूर्णानन्दमय प्रभु हो जाओ।

श्री समयसार गाथा 38 के कलश में आचार्य अमृतचन्द्र कहते हैं कि सर्वजीव आत्मा में मग्न होओ। देखो ! ज्ञानियों की भावना ! वे स्वयं पूर्णानन्दस्वरूप आत्मा में मग्न होते हैं; इसलिये ऐसा कहते हैं कि समस्त जीव भी पूर्णानन्दस्वरूप में मग्न होकर सुखानुभव करो।

सिद्ध परमेष्ठी को स्मरण करते हुये आचार्य कहते हैं कि हे आत्मन् ! तेरे द्रव्यस्वभाव के बड़प्पन की तो बात ही क्या करें ? तूने तो अनंत सिद्धों को अपनी पर्याय में स्थापित किया, इसलिये अब तुझे राग का आदर तो रहेगा ही नहीं, अब तो तू बहुत काल तक अल्पज्ञरूप में भी नहीं रह सकेगा। अब तो तू शीघ्र ही सर्वज्ञस्वभाव में जायेगा और सर्वज्ञ होगा। ऐसा तू नि:संदेह जान। तू भव्य-अभव्य का तो सोचना ही नहीं; किन्तु सिद्ध होने में अनंत काल लगेगा, यह आशंका भी नहीं करना। जैसे सम्यग्दर्शन के पश्चात् सिद्ध होने में असंख्य समय की आवश्यकता होती है, अनन्त समय की नहीं, वैसे ही हे आत्मन् ! तू अन्तर में विश्वास करना कि हम आत्मा की ऐसी बात सुनने योग्य हुये और आचार्य देव ने हमारी योग्यता देखकर हममें अनन्त सिद्धों की स्थापना की है, उन्होंने श्रोताओं को सामूहिक निमंत्रण दिया है कि तुम सब श्रोताजन सिद्ध होने योग्य हो; इसलिये तुममें हम सिद्धत्व की स्थापना करके यह बात प्रारंभ करते हैं। अर्थात् तुम्हें अब सावधानीपूर्वक सुनने की तैयारी करनी पड़ेगी।

स्वरूप संबोधन या उद्‌बोधन

पंचमकाल के मुनि पंचमकाल के अप्रतिबुद्ध श्रोताओं को संबोधते हैं कि नित्यनिगोद के जीव में भी अंतर में स्वभावरूप परिणमित होने की शक्ति है। भले ही निगोद दशा में उस शक्तिरूप से परिणमित नहीं हो सके; किन्तु निगोद पर्याय को अनादि-सान्त करके मनुष्य होकर पंचम पारिणामिक भाव का अनुभव करके सिद्ध का सादि-अनंत भाव प्रकट कर सकता है तो हे जिज्ञासु ! तू तो निगोद से बाहर निकल चुका है। मनुष्यपना प्राप्त करके पंचम परमभाव को बतानेवाली जिनवाणी श्रवण करने आया है। श्रवण कर रहा है तो तू परिणमित होने योग्य क्यों नहीं है ? है, है - ऐसा विश्वास कर! इसमें संदेह मत कर, नि:संदेह हो। हम तुझसे कहते हैं कि तू स्वभावरूप परिणमन करने योग्य है तो फिर तू नि:शंक क्यों नहीं होता। हम तो भगवान का अनुसरण करके तुझसे यह कह रहे हैं; इसलिये तू नि:शंक हो, विश्वास कर, पंचम काल या अल्प पुण्य या अन्य किसी कमी को लक्ष्य में न ले। तू पूर्ण परमात्मतत्त्व है और तद्रूप परिणमन के योग्य है। जैसे अभव्य परिणमित होने योग्य नहीं है; वैसे ही नित्य निगोद के जीव परिणमित नहीं हो सकते - ऐसा नहीं है; फिर तू तो जिज्ञासापूर्वक सुनने आया है, इसलिये तू परिणमन कर सके - ऐसा है। ऐसे नि:शंक हो; भले ही कोई रागादि हों, किन्तु वे तुझे बाधक नहीं है, वे तो ज्ञान के ज्ञेयरूप विषय हैं; इसलिये हीनता और न्यूनता का आश्रय छोड़ और स्वभावरूप परिणमित होने योग्य ही हूँ - इसप्रकार नि:शंक हो।

धर्म धुरंधर योगीन्द्रदेव पुकारते हैं कि - अरे आत्मा ! तू परमात्मा समान है तथापि तू जिन और अपने में क्यों अन्तर करता है। अन्तर करेगा तो फिर वह अन्तर कब छूटेगा ? इसलिये कहते हैं कि मैं तो राग सहित अल्पज्ञता युक्त हूँ - ऐसा मनन मत करो, किन्तु जो जिनेन्द्र हैं सो ही मैं हूँ - ऐसा चिन्तन करो ! अरे रे ! मैं अल्पज्ञ हूँ मुझमें क्या ऐसी शक्ति हो सकती है ? यह आशंका मत कर! अरे तुम तो ऐसा सोचो कि मैं तो वर्तमान में पूर्ण परमात्मा ही हूँ।

अहा ! महाविदेह में प्रभु समवसरण में विराजते हैं। सौ-सौ इन्द्र चक्रवर्ती आदि तथा जंगल के सैंकड़ो केसरी सिंह और बाघों के झुण्ड भगवान की वाणी सुनने आते हैं। अहा ! परमात्मा की वह वाणी कैसी होगी ! सर्वज्ञ परमात्मा कहते हैं कि इस जगत में जिसे परमात्मा कहते हैं, वह कौन है ? वह कोई और नहीं; बल्कि तू स्वयं ही परमात्मा है। पर्याय में जो प्रकट परमात्मा हुये वह पद आया कहाँ से ? स्वयं शक्ति अपेक्षा से परमात्मस्वरूप है, उसमें से वह परमात्मपर्याय प्रकट हुई है। अहा ! जीव ने स्वयं को शक्तिहीन स्वीकार किया है। मैं दयादि का पालन करनेवाला हूँ तथा राग की क्रिया करनेवाला हूँ - ऐसा मानता है। परन्तु ज्ञायक को राग का कर्तृत्व सोंपना वह तो अज्ञान और मिथ्याभ्रम है। 'सर्वोत्कृष्ट जो परमात्मा कहा जाता है, वह तू स्वयं है।' - ऐसी जिनेश्वरदेव की पुकार दिव्यध्वनि द्वारा गणधरों एवं इन्द्रों के समक्ष आई है।

अहाहा ! आत्मा अर्थात् स्वयं ही परमेश्वर ! अनंत-अनंत केवलज्ञान एवं सिद्ध पर्यायें आत्मा में भरी हैं। स्वयं ही परमेश्वर है। दूसरा परमेश्वर कौन है ! तू स्वयं ही अपना परमेश्वर है।

जरा सोच ! तू पामर है या प्रभु है ? तुझे क्या स्वीकारना है ? पामरता की स्वीकृति से पामरता कभी जायेगी नहीं। प्रभुता का स्वीकार करने से पामरता कभी खड़ी नहीं रह सकती। मैं स्वयं द्रव्यपने से परमेश्वर स्वरूप ही हूँ; इसप्रकार जहाँ परमेश्वर स्वरूप का विश्वास आया, वहाँ तू वीतराग हुये बिना रहेगा ही नहीं।

आत्मा की पूर्ण वीतरागदशा को प्राप्त हुये जो परमात्मा हैं वह मैं ही हूँ, क्योंकि मैं स्वयं ही परमात्मा होने योग्य हूँ। आचार्य योगीन्द्रदेव कहते हैं कि यदि तेरा मुक्ति का प्रयोजन हो तो पहले ऐसा निर्णय कर ! निश्चय कर कि मैं ही परमात्मा हूँ।

जैनतिथि दर्पण – 2003

जैनतिथि दर्पण – 2003

तत्वचर्चा **समयसार का सार** **57**

गतांक से आगे **– डॉ॰ हुकमचन्द भारिल्ल**

देखो भाई ! क्षपकश्रेणी में जब भगवान आत्मा का ध्यान होता है; तब अनिवार्यरूप से अन्तर्मुहूर्त में ही केवलज्ञान की प्राप्ति होती है। आठवें गुणस्थान में भी कभी–कभी परपदार्थ ज्ञान के ज्ञेय बन जाते हैं; लेकिन उससे उसको कोई फर्क नहीं पड़ता है; क्योंकि पर में अपनापन नहीं होता है। वह पर को अपना नहीं जानता है, पर के लक्ष्य से उत्पन्न राग–द्वेष को अपना नहीं मानता है। पर को जानने के कारण उसका ज्ञान, श्रद्धान तो भंग होता ही नहीं है, ध्यान भी भंग नहीं होता है।

समयसार के मोक्षाधिकार में आचार्य जयसेन लिखते हैं कि आत्मानुभूति कथंचित् सविकल्प है, कथंचित् निर्विकल्प है।

बौद्ध ऐसा मानते हैं कि ज्ञान निर्विकल्प है; किन्तु वह विकल्प का जनक है और जैनदर्शन यह मानता है कि ज्ञान विकल्प का जनक नहीं; अपितु वह विकल्पात्मक ही है, विकल्प उसका स्वरूप है। ज्ञान को सर्वथा निर्विकल्प माननेवाले जैन होते हुए भी प्रच्छन्न बौद्ध हैं; क्योंकि ज्ञान का स्वरूप ही विकल्पात्मक है, यह स्वभाव से ही विकल्पात्मक है, स्व–परप्रकाशक है।

पर को जानना आत्मा का विकार नहीं है, यह आत्मा का स्वभाव है। फिर आचार्य यह कहते हैं कि – अनुभूति के काल में सूक्ष्म परज्ञेय आत्मा के ज्ञान में आते हैं एवं अनुभूति के काल में सूक्ष्म विकल्प भी चलते रहते हैं; अतः शुद्धोपयोग के काल में आत्मा दो कारण से सविकल्प है। एक स्वभाव से सविकल्प है एवं दूसरा सूक्ष्म विकल्प चलते रहते हैं; इसलिए सविकल्प है।

फिर ज्ञान को कथंचित् निर्विकल्प क्यों कहते हैं ? उसका उत्तर आचार्य देते हैं कि स्थूल विकल्प नहीं होते हैं, सूक्ष्म विकल्पों को गौण करके स्थूल विकल्प नहीं होते हैं; इसकी मुख्यता से उसे निर्विकल्प कहा जाता है, इसे हम इस उदाहरण से समझ सकते हैं।

जैसे सातवीं प्रतिमाधारी को ब्रह्मचारी कहा जाता है, वह पंचमगुणस्थानवर्ती है और मैथुन संज्ञा तो नोवें गुणस्थान तक रहती है; फिर भी उसे ब्रह्मचारी कहा जाता है; इसका कारण यह है कि स्थूल ब्रह्मचर्य का जिससे घात होता है, उसका उसमें अभाव है अर्थात् स्त्री सेवन का त्याग है; अतः उसे ब्रह्मचारी कहा जाता है।

इसीतरह ज्ञान भी दो कारणों से सविकल्प है, एक स्वभाव से सविकल्प है एवं दूसरा सूक्ष्म विकल्प विद्यमान है; अतः सविकल्प है। अनुभूति के काल में स्थूल विकल्प नहीं होने से उसी ज्ञान को निर्विकल्प भी कहा जाता है।

कोई कहे कि ज्ञान है तो 'निर्विकल्प' और कहा जाता है 'सविकल्प'; पर ऐसा नहीं है। विकल्पात्मक उसका स्वरूप है; अतः यह निश्चय है एवं उनके होते हुए भी स्थूल विकल्प नहीं होते हैं; इसलिए निर्विकल्प कहा– यह उपचार है। यही भेदविज्ञान की मूलदृष्टि है।

पर जानने में आ रहा है; लेकिन उसे जानने का रस नहीं है और न ही उसे नहीं जानने का रस है। न उसे जानने का विरोध है और न ही उसे नहीं जानने का विरोध है; तो फिर क्या होगा ?

जो होगा सो होगा !

कोई यह पूछे कि उसकी लड़की की शादी है, उसमें आप जाओगे ?

तब हमें न वहाँ जाने का विकल्प है और न ही नहीं जाने का विकल्प है। न जाने का तीव्र रस है और न ही नहीं जाने का तीव्र रस है। ऐसी कषाय भी नहीं है कि मैं जाऊँ या नहीं जाऊँ ? सौ–सौ लोग मनाएं और नहीं जाऊँ – ऐसा भी विकल्प नहीं है; तब क्या करेंगे आप ?

उस वक्त जो होगा उसे देख लेंगे, जान लेंगे।

लोकव्यवहार में यदि किसी से पूछा जाय की भाईसाहब ! आप उनकी शादी में जाओगे या नहीं ?

तब हम बोलते हैं कि – 'देखेंगे'।

इसका अर्थ यह होता है न पक्ष में कुछ निर्णय की स्थिति है और न ही विपक्ष में कोई विकल्प है। न ऐसा द्वेष है कि नहीं जाएं और न ऐसा तीव्र राग है कि जाएं; इसप्रकार का जो भाव होता है – इसे ही सहज उदासीनभाव कहते हैं।

ऐसे ही पर के प्रति मेरा सहज उदासीनभाव है। न जानने का विकल्प है और न नहीं जानने का विकल्प है। जानने में आ न जाएं – ऐसा भय भी नहीं है। जब आत्मा का ध्यान करने बैठे हैं; तब परद्रव्य जानने में न आ जाएं – ऐसी चिंता नहीं है। जानने में आ जाए तो उसे भी जान लेंगे। नेत्रों में कोई परद्रव्य घुस नहीं रहा है, जिसे हमें हटाना हो। आत्मा की तीव्र रुचि जहाँ हो; उपयोग स्वयमेव वहाँ चला जाता है।

पण्डित बनारसीदासजी कहते हैं कि यह तो सहज का धंधा है। उपयोग को किसी से हटाना नहीं है। उपयोग को सहज छोड़ दो। इसे जहाँ जाना है, वहाँ जाने दीजिए, चिन्ता मत कीजिए। वह जहाँ भी जाएगा वापिस लौटकर आत्मा में ही आनेवाला है। यदि आत्मा में वीतरागभाव विद्यमान है तो इसे पर को जानने से भी कुछ हानि होनेवाली नहीं है। जबरन उपयोग को हटाने या लगाने से कोई प्रयोजन सधनेवाला नहीं है।

मुझे स्वयं को जानने का रस है। पर को जानने का विकल्प हो तो हो एवं न हो तो न हो। 'पर जानने में न आ जाय' – ऐसे विकल्प में यदि हम रहेंगे तो पर ही वहाँ मुख्य रहा; वहाँ निज कहाँ मुख्य रहा। जब यह निज को जानेगा, तब स्वयमेव ही पर जानने में नहीं आएगा।

पुनः–पुनः यदि वह इसी बात पर वजन डालेगा कि मुझे पर को नहीं जानना है तो इसे पर ही मुख्य रहेगा। जितना यह पर को नहीं जानने का विकल्प करेगा; उतना वह पर में ही उलझेगा। अतः न पर को जानने का विकल्प करो; न ही नहीं जानने का। जो हो रहा है, उसे सहजभाव से हो जाने दो।

यह जानना पहिचानना ही ज्ञान है श्रद्धान है।
केवल स्वयं की साधना आराधना ही ध्यान है।।
यह ज्ञान यह श्रद्धान बस यह साधना आराधना।
बस यही संवरतत्त्व है, बस यही संवरभावना।।
इस सत्य को पहिचानते वे ही विवेकी धन्य हैं।
ध्रुवधाम के आराधकों की बात ही कुछ अन्य है।।[1]

वस्तुस्वरूप की दृष्टि से यह संवरतत्त्व है और यही चिंतन का विषय बने तो संवरभावना है।

भेदविज्ञान के इस संवराधिकार की यह चरम सीमा है।

ऐसा भेदविज्ञान पहले गुरु के मुख से सुनकर और जिनवाणी को पढ़कर होता है।

इससे आगे बढ़कर जब ऐसा निर्णय होता है कि 'यह आत्मा मैं ही हूँ' तब और अधिक रुचि के जोर से उपयोग पर से हटकर त्रिकाली ध्रुव भगवान आत्मा में चला जाता है। यह रुचि का जोर ही प्रायोग्यलब्धि है।

जब उपयोग तेजी से अन्तर्मुख हो जाता है; तब करण–लब्धि प्रगट होती है एवं इसके पश्चात् आत्मा का अनुभव हो जाता है। तब संवर की उत्पत्ति हो जाती है।

क्या यहीं पर भेदविज्ञान का प्रकरण पूर्ण हो जाता है ?

नहीं, यहाँ से तो भेदविज्ञान का वास्तविक प्रकरण प्रारम्भ होता है। यह भेदविज्ञान मिथ्यात्व के नाश के लिए था; अब चारित्रमोह के उदय से जो कषाय विद्यमान है, उसके नाश के लिए भेदविज्ञान का प्रारम्भ होता है। पर तो पर है ही, द्रव्यकर्म भी भिन्न ही है; अब यह आत्मा भावकर्म के नाश के लिए बारम्बार स्वशक्ति को स्पर्श करता है।

इस अर्थ को प्रगट करनेवाले कलश का पद्यानुवाद कुण्डलिया के रूप में इसप्रकार है –

स्वयं सहज परिणाम से कर दीना परित्याग।
सम्यग्ज्ञानी जीव ने बुद्धिपूर्वक राग।।
बुद्धिपूर्वक राग त्याग दीना है जिसने।
और अबुद्धिक राग त्याग करने को जिसने।।
निजशक्तिस्पर्श प्राप्त कर पूर्णभाव को।
रहे निरास्रव सदा उखाड़े परपरिणति को।।[2]

अबुद्धिपूर्वक राग के नाश के लिए पुनः–पुनः निजशक्ति का स्पर्श करता है। स्पर्श करता है अर्थात् ज्ञान का ज्ञेय बनाता है। यह आत्मा श्रद्धा का श्रद्धेय तो बना हुआ ही है, पुनः–पुनः ध्यान का ध्येय बनता है। निरन्तर होनेवाली इसप्रकार की प्रक्रिया से अबुद्धिपूर्वक राग भी नष्ट होता है, इससे अनंतानुबंधी, प्रत्याख्यानावरणी और अप्रत्याख्यानावरणी कषायें जड़मूल से नष्ट होती हैं। भेदविज्ञान की प्रबल भावना से ही यह संभव होता है। जैसे–जैसे भेदविज्ञान की भावना प्रबल से प्रबलतम होती जाती है; वैसे–वैसे प्रत्याख्यानावरणी, अप्रत्याख्यानावरणी और संज्वलन का नाश होकर केवलज्ञान प्रगट होता है।

भेदविज्ञान की भावना अंत तक मुख्य रहती है। निरन्तर एक ही भावना भानी है कि पर से भिन्न, पर्यायों से पार, गुणभेद से भिन्न ऐसा जो भगवान आत्मा है – वह ही मैं हूँ, मेरा सर्वस्व वही है, अन्य कुछ मेरा नहीं है, यही श्रद्धान करने योग्य है – ऐसा मानना–जानना ही संवरतत्त्व है।

lkygok iopu

संवराधिकार के पूर्व प्रकरण में भेदविज्ञान का स्वरूप एवं उसकी महिमा विस्तार से बताई गई है। अब निर्जरा अधिकार आरम्भ करते हैं। निर्जरा किसप्रकार होती है एवं निर्जरा का क्या स्वरूप है ? यह बात सभी ने जिनागम से अच्छी तरह समझ रखी है – ऐसा मानकर यहाँ आचार्यदेव निर्जरा अधिकार आरम्भ करते हैं। इसलिए समयसार के निर्जराधिकार को समझने के पूर्व निर्जरा का सामान्य स्वरूप समझना अत्यंत आवश्यक है।

निर्जरा दो प्रकार की होती है – द्रव्यनिर्जरा एवं भावनिर्जरा। स्वयं के रागभाव के कारण पूर्व में बंधे हुए ज्ञानावरणादि आठ कर्मों का उदय में आकर खिरना अथवा उदीरणा होकर खिरना अर्थात् उनका आत्मा से संबंध का अभाव होना, बंधन का अभाव होना ही द्रव्यनिर्जरा है। जिन शुद्धोपयोगरूप परिणामों से, निर्मल परिणति से द्रव्यनिर्जरा होती है; उसे ही भावनिर्जरा कहते हैं।

इस भावनिर्जरा का प्रतिपादन भी दो प्रकार से होता है, एक अस्ति से एवं दूसरा नास्ति से। शुद्धभावों का निरन्तर वृद्धिगत होना यह अस्ति से भावनिर्जरा है एवं अशुद्ध भावों का क्रमशः कम होते जाना; यह नास्ति से भावनिर्जरा है।

संवरपूर्वक निर्जरा होती है। नये कर्मों के आने का रुकना द्रव्यसंवर है एवं अशुद्धभावों का रुकना एवं शुद्धभावों का होना भावसंवर है। भावसंवर में जो शुद्धि प्रगट हुई, उसी शुद्धि की निरन्तर वृद्धि होना ही निर्जरा है। ज्यों–ज्यों शुद्धि बढ़ती जाएगी और अशुद्धि की हानि होती जाएगी तो एक समय ऐसा आएगा जब पूर्ण शुद्धता प्राप्त होगी एवं अशुद्धि की हानि पूर्ण हो जाएगी। बस यही मोक्ष है।

पूर्ण शुद्धता अर्थात् सर्व कर्मों से मुक्त होना ही मोक्ष है। सर्व कर्मों से मुक्त हो जाना; द्रव्यमोक्ष है एवं शुद्धता का पूर्णतः प्रगट हो जाना भावमोक्ष है। निर्जरा भावमोक्ष एवं संवर के मध्य की स्थिति है। इसतरह यह निर्जरा का सामान्य स्वरूप हुआ। **(क्रमशः)**

1. बारह भावना : डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल – संवर भावना
2. समयसार कलश पद्यानुवाद, छन्द : 116

रजिस्ट्रेशन आर. एन. आई. 31109/77

वैराग्य समाचार

1. कलकत्ता निवासी श्री राजमलजी पाटनी का दिनांक 16 अक्टूबर को अमेरिका में शान्त परिणामोंपूर्वक देहावसान हो गया है।

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय परिवार तथा अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन श्रीमान् राजमलजी पाटनी, कलकत्ता के निधन के प्रति शोक व्यक्त करते हुये शोक प्रस्ताव पारित करते हैं।

राजमलजी पाटनी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी द्वारा प्रतिपादित तत्त्वज्ञान से ओतप्रोत थे और उसके प्रचार-प्रसार के लिये सतत् प्रयत्नशील रहते थे। आपका महाविद्यालय के संचालन में महत्त्वपूर्ण योगदान है। जैनदर्शन की प्रभावना में इनके योगदान को सदा याद किया जायेगा।

आपके निधन से जो स्थान रिक्त हुआ है, उसकी पूर्ति असंभव है।

2. खुरई निवासी पण्डित शिखरचन्द्रजी भायजी का शनिवार दिनांक 16 अक्टूबर को समताभावपूर्वक निधन हो गया है। आप अत्यन्त स्वाध्यायी धर्मप्रेमी व्यक्ति थे। गुरुदेवश्री द्वारा प्रतिपादित तत्त्वज्ञान को आपने आत्मसात किया। आप प्रतिदिन दोनों समय मंदिर में प्रवचन किया करते थे।

आपकी स्मृति में 201 रुपये जैनपथप्रदर्शक समिति तथा 201 रुपये वीतराग-विज्ञान को प्राप्त हुये हैं; एतदर्थ धन्यवाद !

3. शाहगढ़ (सागर) निवासी श्री खूबचन्दजी डेवड़िया (स्वतंत्रता संग्राम सेनानी) का दिनांक 24 अक्टूबर 2002 को शांत परिणामों से देहविलय हो गया है। आप अच्छे स्वाध्यायी थे तथा अपने पूरे क्षेत्र में तत्त्वप्रचार के लिये सतत प्रयत्नशील थे।

दिवंगत आत्मायें शीघ्र ही मुक्तिलक्ष्मी का वरण करें - यही हमारी मंगल कामना है। **- प्रबन्ध सम्पादक**

64 ऋद्धि विधान एवं संस्कार शिविर सानन्द सम्पन्न

सुसनेर (म.प्र.) : यहाँ दिनांक 6 से 10 अक्टूबर तक श्री दिगम्बर जैन बिचला मंदिर में श्री केशरीसिंहजी पाण्डे के संचालन में विधान एवं संस्कार शिविर सानन्द सम्पन्न हुआ।

इस अवसर पर पण्डित देवेन्द्रकुमारजी बिजौलिया तथा पण्डित धनसिंहजी 'ज्ञायक' पिड़ावा के प्रवचनों का लाभ प्राप्त हुआ। एक दिन पण्डित सतीशजी कासलीवाल का भी मार्मिक प्रवचन हुआ।

विधि-विधान के सम्पूर्ण कार्य पण्डित ज्ञायकजी, पण्डित मनीषजी शास्त्री, पण्डित चेतनजी शास्त्री एवं पण्डित महावीर शास्त्री द्वारा सम्पन्न कराये गये। इन्हीं विद्वानों के माध्यम से बालकों में संस्कार डालने हेतु वैज्ञानिक पद्धति से बाल कक्षायें लीं गईं।

शिविर में 150 बालक-बालिकाओं के अतिरिक्त 100 से अधिक मुमुक्षुओं ने भी लाभ लिया।

राज्य स्तरीय प्रतियोगिताओं में -
टोडरमल महाविद्यालय के छात्र वरीयता क्रम में

श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय, जयपुर के छात्र नितिन जैन भिण्ड ने हिन्दी राज्यस्तरीय वाद-विवाद प्रतियोगिता में पक्ष में प्रथम स्थान तथा संतोष जैन मिन्चे ने विपक्ष में प्रथम स्थान प्राप्त किया।

संस्कृत वाद-विवाद प्रतियोगिता में 'विश्वशांति संस्कृतेनैव संभवति' विषय के पक्ष में चिन्मय जैन पिड़ावा ने द्वितीय स्थान प्राप्त किया।

संस्कृत श्लोक अंताक्षरी प्रतियोगिता में राजस्थान के विभिन्न जिलों की 27 टीमों ने भाग लिया, इसमें भी टोडरमल सिद्धान्त महाविद्यालय के चिन्मय जैन एवं आशीष जैन विदिशा ने पाँचवाँ स्थान प्राप्त किया।

इसी क्रम में राज्यस्तरीय क्रिकेट टीम में भी टोडरमल महाविद्यालय के चार विद्यार्थियों का चयन किया गया।

उक्त सभी छात्रों को महाविद्यालय परिवार की ओर से हार्दिक बधाई !

ग्रन्थमाला सदस्य ध्यान दें

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर द्वारा संचालित ग्रन्थमाला योजना के सभी सदस्यों को नवम्बर माह तक पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट से प्रकाशित - सुख कहाँ, गोली का जवाब गाली से भी नहीं, भेदविज्ञान का यथार्थ प्रयोग, सार संक्षेप, सिद्ध स्वभावी ध्रुव की ऊर्ध्वता, सुक्ति संग्रह, पंच परमेष्ठी, समयसार अनुशीलन भाग-5 (उत्तरार्द्ध), परमभाव प्रकाशक नयचक्र, विचित्र महोत्सव, अहिंसा के पथ पर, अलिंगग्रहण प्रवचन, आप कुछ भी कहो, परमार्थ वचनिका, समयसार कलश पद्यानुवाद - ये ग्रन्थ भेजे जा चुके हैं। साथ में मराठीवालों को समयसार अनुशीलन भाग-1, गोली का जवाब गाली से भी नहीं व मैं स्वयं भगवान हूँ - नामक पुस्तकें भेजीं है। गुजरातीवालों को अहिंसा महावीर की दृष्टि में भी भेजी गई है।

जिन सदस्यों को ग्रन्थ प्राप्त नहीं हुये हों, वे पोस्ट ऑफिस में तलाश कर हमें निम्न पते पर सूचित करें। **- मैनेजर,** पं. टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए-4, बापूनगर, जयपुर-15 (राज.)

जैनपथप्रदर्शक (पाक्षिक) **नवम्बर (द्वितीय) 2002**
आई. आर. / R. J. **3002/02**

प्रति,

सम्पादक : **पण्डित रतनचन्द भारिल्ल** शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., बी.एड.
प्रबन्ध सम्पादक : **पण्डित संजीवकुमार गोधा जयपुर**, एम.ए. (जैनविद्या एवं तुलनात्मक धर्मदर्शन)
प्रकाशक एवं मुद्रक : **ब्र. यशपाल जैन** द्वारा जैनपथप्रदर्शक समिति के लिए जयपुर प्रिण्टर्स प्रा.लि., एम. आई. रोड, जयपुर से मुद्रित तथा त्रिमूर्ति कम्प्यूटर्स, ए-4, बापूनगर, जयपुर से प्रकाशित।

यदि न पहुँचे तो कृपया निम्न पते पर भेजें -
ए- 4 बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)
फोन : (0141) 705581, 707458
तार : त्रिमूर्ति, जयपुर **फैक्स :** 704127